व्यक्ति की पहचान सत्संगति से

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सत्संगति का अर्थ है अच्छे व्यक्तियों की संगति में रहना। जिसके अंदर विकास की प्रवृत्ति हो जिसके अन्दर अच्छे गुण हो। उनके साथ रहने से चारित्रिक विकास होता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो कुसंगति देते हैं। जो परोपकार और धार्मिक विचार वाले होते है वे स्वकल्याण के साथ परकल्याण करते है। संस्कारों की संगति को सत्संगति कहा जाता है। जो व्यक्ति स्वकल्याण के साथ परकल्याण की भावना रखता है, जो अपने विकास के साथ–साथ दूसरों के विकास की कामना करता है उसके साथ रहने से मानव का विकास होता है। सत्संगति अच्छी संगति है। अच्छी और बुरी संगति करना अपने ऊपर निर्भर करता है। किसान बीज बोने में स्वतन्त्र है किन्तु जैसा बीज बोया है वैसा ही परिणाम आयेगा। भाव जैसा रहेगा विचार भी वैसा हो जायेगा। भाव अमूर्त्त और एक आन्तरिक प्रक्रिया है। भाव नहीं बिगाड़ना चाहिए। यह कर्मबीज कहलाता है। कर्मबीज के बपन से उसका परिणाम हमें मिलता ही है। सत्संगति स्वभाव है। अपनी प्रकृति के अन्दर परिवर्तन करना, आत्मनिरक्षण करना हमारा स्वभाव है। शांति, दया, मैत्री, सहयोग, प्रेम स्वभाव हैं। राग–द्वेष, हिंसा, ईर्ष्या ये सब विभाव है। स्वभाव और विभाव दोनों मनुष्य में रहते हैं। आत्मा कभी स्वभाव में रहती है और कभी विभाव में। जन्म–जन्मान्तर में हमने जो कर्म किया है वह कभी–कभी उदय में आता है। आचार–विचार और व्यवहार की प्रवृत्ति शुद्ध होनी चाहिए। जब आत्मा निज स्वरूप में आ जाती है तो विभाव समाप्त हो जाता है। वेदान्त में जीव और ब्रह्म की एकता का वर्णन है। जीव को जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तो वह शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है। जिसकी संगति करने से लाभ हो हानि न हो उसकी संगति करनी चाहिए। गुरु की संगति करनी चाहिए, क्योंकि गुरु अज्ञान को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। व्यक्तित्व विकास के लिए सत्संगति आवश्यक है। सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हर लेती है, वाणी में सत्य का संचार

करती है, चारों दिशाओं में यश को फैलाती है और पाप को दूर करके शुद्ध मानव बनाती है। अपने से श्रेष्ठ लोगों की संगति करनी चाहिए। वरिष्ठ नागरिक जो अनुभव का खजाना है उसके पास बैठकर ज्ञान लेना चाहिए। उनसे अच्छी बाते सीखनी चाहिए। ज्ञान को आचरण में उतारना चाहिए। जो सबको साथ लेकर चल सके उसकी संगति करनी चाहिए।

माता बच्चे की प्रथम पाठशाला होती है। बच्चों को माता–पिता की बातों को मानना चाहिए। माता–पिता ही सबसे पहले गुरु है। उन्हीं से ही बच्चा सीखने लगता है। अभिमन्यु ने अपने माता के गर्भ में ही ज्ञान सीखना प्रारम्भ कर दिया था। माता अपने बच्चों को महान बनाना चाहती है। गर्भिणी स्त्री को अच्छे–अच्छे प्रवचन सुनना चाहिए। मन में रचनात्मक भावों को लाना चाहिए और सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। जिससे उसके गर्भ में पलने वाला बच्चा स्वस्थ और रचनात्मक बुद्धि का हो सके। युवाओं के लिए यह विषय विशेष प्रासंगिक है। सत्संगति और कुसंगति दोनों समाज में है। सत्संगति उत्थान और कुसंगति पतन का कारण है। जो युवा नशीले पदार्थों के सेवन में फंस जाते है वे जीवन को बर्बाद कर देते है। यह कुसंगति का परिणाम है। इसलिए युवाओं को सावधान रहने की जरूरत है। कुसंगति में पड़ा हुआ व्यक्ति समाज में भार बन जाता है। जिस समय को उसने बर्बाद किया है वही समय उसे बर्बाद कर देता है। इसलिए समय की गति को पहचान कर सत्संगति के महत्व को समझकर अच्छे गुणों को धारण करना चाहिए। सत्संगति संस्कारों और अच्छे गुणों का बिजारोपण करती है।

मानव जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है। संस्कारों का बीजरोपण बालपन में ही अच्छे ढ़ंग से किया जा सकता है। जब बच्चा माता के गर्भ से जन्म लेता है तब उसका मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। धीरे–धीरे परिवार, समाज और वातावरण से वह सीखता है। विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो संसार के प्रत्येक जीव में पाई जाती है। बालक में संस्कारों के सीखने की प्रक्रिया का प्रारम्भ जन्म के कुद दिनों बाद ही हो जाता है। जैसे–जैसे उसकी शारीरिक और मानसिक, परिपक्वता बढ़ती जाती है, उसमें सीखने की क्षमता उतनी ही बढ़ती जाती है; साथ–ही–साथ वह जटिल चीजों को सीखने के लिए अधिक योग्य होता जाता है। प्रारम्भ में वह अपनी मां के चेहरे को पहचानना सीखता है, फिर अन्य परिवारजनों अथवा

उसके निकट रहने वाले लोगों को। इस प्रक्रिया के द्वारा उठना, बैठना, दौड़ना, कूदना, बोलना आदि सब कुछ सीखता है। विभिन्न कौशलों का अधिगम भी वह करता है। कुछ विशेषताएं वह परिपक्वता के साथ–साथ सामाजिक अन्तःक्रियाओं के कारण सीखता है परन्तु अन्य विशेषताओं, संस्कारों और गुणों को बालक को सिखाना भी पड़ता है। बालकों को सिखाने और संस्कारित करने में, उसकी शिक्षा और प्रशिक्षण में बाल–विकास का ज्ञान बहुत उपयोगी है। संस्कार और कुसंस्कार परिवार और समाज से ही बालक ग्रहण करता है। यहां पर दो तोते के उदाहरण से इसको समझा जा सकता है। एक तोता संन्यासी के पास था और दूसरा तोता एक डाकू के पास। संन्यासी के पास वाला तोता राम–राम जपता था और डाकू के पास वाला तोता मारो, काटो, लूटो जैसे बुरे वचनों को बोलता था। तोता एक प्राकृतिक प्राणी है किन्तु संन्यासी और डाकू के संस्कार का असर तोते पर पड़ गया। जिससे दोनों की प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न हो गयी।